
इकाई 19 पश्चिम भारत में वंश और राज्यसंघ

इकाई की रूपरेखा

- 19.0 प्रस्तावना
- 19.1 राजनीतिक प्रक्रिया के रूप में वंशों की रचना
- 19.2 वंशों की संरचना: संरक्षक-आश्रित ढाँचा
- 19.3 रिचर्ड फॉक्स का विकासात्मक चक्रीय ढाँचा
- 19.4 सारांश
- 19.5 अभ्यास

19.0 प्रस्तावना

इस इकाई में हम प्रारंभिक मध्यकालीन तथा मध्यकालीन राजस्थान में राजपूतों के वंशों और राज्यसंघों के विकास की जाँच-पड़ताल करेंगे। यह जांच मुख्यतः दो आधारों पर की जाएगी। पहला आधार बी.डी. चट्टोपाध्याय द्वारा प्रतिपादित किया गया है जो प्रारंभिक मध्यकाल में राजपूतों की उत्पत्ति से संबंधित है और दूसरा मत नॉरमन जीगलर का है जो मध्यकाल पर प्रकाश डालते हैं। विभिन्न प्रमाणों पर आधारित इन दोनों आधारों की तुलना राजपूतों की वंश संरचना की प्रक्रिया की जानकारी लेने के लिए की जा सकती है। यह स्पष्ट है कि इस मुद्दे पर दोनों विद्वानों के परिप्रेक्ष्य अलग-अलग हैं। बी. डी. चट्टोपाध्याय के अनुसार राजपूतों की उत्पत्ति का चित्रण करने में राजनीतिक अवधारणा का प्रयोग महत्वपूर्ण है। उनके द्वारा प्रतिष्ठित योद्धाओं के रूप में राजपूतों का उत्थान और उनकी उपलब्धियों को अनिवार्यतः राजनीतिक प्रक्रिया के रूप में देखा गया है। दूसरी ओर जीगलर के अनुसार मुगल काल में सगोत्र आधारित वंशीय संरचनाओं में सेवा एवं विनिमय तंत्र में परिवर्तन ही वह कारक है जिससे मुगल काल में राजपूतों के बारे में जाना जा सकता है। इस प्रक्रिया को वह संरक्षक-आश्रित (patron-client) ढाँचे की मदद से स्पष्ट करते हैं। भारतीय इतिहास लेखन में अक्सर इन दोनों ढाँचों में टकराव भी होता रहा है। हालांकि हाल ही में यह तर्क दिया गया है कि स्थानीय स्तर पर सामाजिक प्रक्रिया को समझने में संरक्षक आश्रित ढाँचा अधिक उपयोगी है। स्थानीय मारवाड़ी इतिहासकारों तथा खयात के दस्तावेजों का इस्तेमाल करते हुए जीगलर ठीक ऐसा ही करते हैं। दूसरी ओर चट्टोपाध्याय वंशावलियों, समसामयिक वृत्तांतों, अभिलेखों तथा वीर स्तंभ (Hero-stones) के ज़रिए राजपूतों के उदय की ऐतिहासिक संरचना की विवेचना करते हैं।

19.1 राजनीतिक प्रक्रिया के रूप में वंशों की रचना

प्रारंभिक मध्यकाल में राजपूत राजवंशों की उत्पत्ति से संबद्ध अध्ययनों से पता चलता है कि यह एक राजनीतिक प्रक्रिया रही होगी। विभिन्न विद्वानों के बीच इस मुद्दे पर सहमति है। हालांकि राजपूतों की उत्पत्ति की प्रकृति काफी विवादास्पद है। उनके गोत्रचर उन्हें सोमवंशी क्षत्रिय बताते हैं जबकि प्राचीन काव्यों के आधार पर

कुछ लोगों का मानना है कि वे सूर्यवंशी थे। उनके उदय से संबद्ध निथक बताते हैं कि कलियुग में म्लेच्छों का सफाया करने के लिए इन्हें क्षत्रिय बनाया गया। राजस्थानी चारण और इतिहासकार इन्हें अग्निकुल (अग्नि से उत्पन्न) मानते हैं।

उत्पत्ति के अग्निकुल विवरण के अनुसार, जो हमें एक दरबारी कवि से प्राप्त होता है, परमार वंश के संस्थापक की उत्पत्ति मांडव आबू पर वशिष्ठ मुनि के अग्निकुंड से हुई। जो व्यक्ति अग्निकुंड से प्रकट हुआ उसने इच्छापूर्ति करने वाली वशिष्ठ मुनि की गाय को मुनि विश्वामित्र से छीनकर उसे वशिष्ठ मुनि को सौंपा। वशिष्ठ मुनि ने उसे परमार का नाम दिया अर्थात् शत्रु को मारने वाला। मिथक आगे वर्णित करता है कि उस व्यक्ति से वह वंश उत्पन्न हुआ जिसे उत्तम राजाओं का सम्मान प्राप्त किया। राजस्थानी कवियों और कथावाचकों ने केवल परमारों की ही नहीं बल्कि प्रतिहारों, गुजरात के चालुक्यों और चहमानों की उत्पत्ति भी अग्नि से मानी है।

कई विद्वानों ने इस ओर इशारा किया है कि उत्पत्ति का प्रश्न "किसी विशेष राजवंश के दृष्टिकोण से देखने की बजाय उसे पूर्ण समग्रता में देखा जाना चाहिए ताकि वह हमें उसके राजनीतिक महत्व को समझाने में मददगार होगा"। उनके तर्क के अनुसार क्षत्रिय होने का दावा करने वाले नए सामाजिक समूहों का चलन प्रारंभिक मध्यकाल में व्यापक था। क्षत्रिय होना एक ऐसा प्रतीक था जिसे नवीन उदित सामाजिक समूह अपनी नई अर्जित ताकत की वैद्यता के लिए पाना चाहते थे। प्रारंभिक मध्यकालीन तथा मध्यकालीन राजपूत वंशों ने धीरे- धीरे राजनीतिक प्रतिष्ठा हासिल की। यह राजपूत वंश मिश्रित जातियों के थे और उनमें बड़ी संख्या में छोटे और ऐसे सरदार शामिल थे जिनके पास जागीरें थी। 'प्रतिहारों, गुहिलों, चहमानों और अन्य वंशों द्वारा राजनीतिक प्रतिष्ठा की उपलब्धि और क्षत्रिय वंश परंपरा जैसी प्रतिष्ठित सामाजिक हैसियत पाने की उनकी प्रवृत्ति के बीच एक स्पष्ट संबंध था। यह तर्क दिया जाता है कि "इस संदर्भ में इस बात पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि इन राजवंशों ने सत्ता प्राप्त करने के बहुत समय बाद प्राचीन क्षत्रियों के वंशज होने का दावा किया"। एक मत के अनुसार प्राचीन राजपूत वंशों में से एक, गुर्जर प्रतिहार, अपनी उत्पत्ति का दावा महाकाव्य के नायक राम के भाई लक्ष्मण के वंश से करते हैं जिसका जिक्र नवीं शताब्दी में राजा भोज के एक अभिलेख में मिलता है। उस समय राजपूत वंश परंपरा में प्रवेश राजनीतिक शक्ति की प्राप्ति से संभव था और पौराणिक युग के क्षत्रिय वंशों से संबंध जोड़ कर इसे वैद्यता प्रदान कर जी जाती थी।

कुछ विद्वानों का मानना है कि राजनीतिक शक्ति का वितरण एकसमान नहीं हुआ करता था। पश्चिम भारत में राजनीतिक शक्ति के उदय की प्रक्रिया यह दर्शाती है कि राजनीतिक सत्ता का वितरण सत्ता के राज्यतंत्रीय रूप के ढांचे के भीतर कुलों/वंशों के नेटवर्क के अध्ययन से स्थापित किया जा सकता है। बी.डी. चट्टोपाध्याय भी जोर देते हैं कि राजपूतों की उत्पत्ति को राजनीतिक संरचना में विद्यमान श्रेणीबद्धता में देखा जा सकता है। इसके प्रमाण राजस्थान के चहमानों और दक्षिण राजस्थान, गुजरात तथा मालवा के परमारों के राजवंशीय विवरणों से प्राप्त होते हैं।

जैसा कि हमने स्पष्ट किया है वंशीय शक्ति की रचना और संघटन एकसमान नहीं विकसित हुए। वंशीय शक्ति के गठन के सूचकों में से एक है नए क्षेत्रों का

औपनिवेशीकरण जिसे क्षेत्रीय विस्तार से जाना जा सकता है। संगठित सैन्य शक्ति के माध्यम से नए क्षेत्रों पर नियंत्रण द्वारा औपनिवेशीकरण किया गया। कहा जाता है कि सप्तशत कहे जाने वाले नाडोल चौहान राज को उस चौहान प्रमुख ने सप्तशत बनाया जिसने अपने राज्य की सीमाओं से लगे क्षेत्रों के प्रमुखों को परास्त कर उनके क्षेत्रों को अपने क्षेत्र में मिला लिया। पश्चिम भारतीय शक्तियों द्वारा कुछ क्षेत्रों में विस्तार जनजातीय क्षेत्रों की कीमत पर किया गया। मंडोर प्रतिहारों के काक्कुका को अभीरों के बसे बसाए क्षेत्र का पुनर्वास करने का श्रेय जाता है। पश्चिम और मध्य भारत में शबरो, भीलों तथा पुलिंदों जैसी जनजातीय आबादी का दमन भी किया गया। इसी तरह चारण परंपरा के अनुसार दक्षिण राजस्थान में गुहिला राज्यों ने भीलों के प्रारंभिक जनजातीय राज्यों पर विजय प्राप्त की। चौहानों का अहिच्छत्रपुर से जंगलदेश (शाकंभरी) की ओर प्रवास उस दुर्गम क्षेत्र के औपनिवेशीकरण के कारण हुआ। दसवीं शताब्दी के एक दस्तावेज़ में उल्लेख किया गया है कि शाकंभरी चहमान वंश के वाक्पटों प्रथम का पुत्र लक्ष्मण कुछ अनुयायियों के साथ रवाना हुआ और नडुला के इर्द-गिर्द रहने वाले लोगों पर हमले करने वाले मेड़ों के खिलाफ लड़ा। इससे उस क्षेत्र के ब्राह्मण अधिपति प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे शहरों के रक्षक के तौर पर नियुक्त कर दिया। धीरे-धीरे लक्ष्मण ने एक छोटे सैन्यदल को एकत्र किया और मेड़ों को इन्हीं के क्षेत्र में चुनौती दे डाली। मेड़ों ने गाँवों से दूर रहकर लक्ष्मण को शुल्क देना स्वीकार किया। लक्ष्मण 2000 घोड़ों का मालिक बन गया और उसने अपने अधिकार क्षेत्र का विस्तार किया तथा नाडोल में एक भव्य महल बनाने की तैयारी में लग गया। इससे बी.डी. चट्टोपाध्याय इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि राजपूतों की उत्पत्ति की प्रक्रिया को जनजातियों के संक्रमण के संदर्भ में देखा जा सकता है।

बी.डी. चट्टोपाध्याय ने इस प्रक्रिया को ब्राह्मणों से आगे जोड़ते हुए स्पष्ट किया है कि "जब हम उन विभिन्न चरणों की बात करते हैं जिनमें वंशक्रमों का गठन हुआ तो यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि नए उभरते हुए राजसी वंशों में से अधिकांश, जैसे ब्रह्मक्षत्र (ब्राह्मण-क्षत्रिय) की स्थिति परिवर्ती थी जो एक बार प्राप्त होने के बाद पूरी तरह नहीं त्याग दी गई और ब्राह्मणों से क्षत्रियों में तथाकथित प्रामाणिक परिवर्तन को लेकर औचित्य दिये जाते रहे। यदि उनके अपेक्षाकृत परिवर्ती दस्तावेजों के आधार पर इस बात को स्वीकार भी कर लिया जाए कि गुहिला और चहमान दोनों ही मूलतः ब्राह्मणों के वंशज हैं, हालांकि उनके प्रारंभिक दस्तावेजों में ऐसे वंश के बारे में कोई दावे नहीं किए गए हैं, तब यह कहा जा सकता है कि अपनी नई क्षत्रिय भूमिका को वैद्य ठहराने के लिए इस स्थिति पर जोर दिया गया। चट्टोपाध्याय आगे तर्क देते हैं कि "जैसा भारत में इसके व्यापक प्रचलन से समझा जा सकता है यह भी संभव है कि ब्रह्मक्षत्र अपेक्षाकृत एक ऐसी उदार प्रस्थिति थी जिस पर उनके विशुद्ध क्षत्रिय मूल का दावा करने से पहले ही नए राज परिवारों ने कब्जा कर लिया था।

बी.डी. चट्टोपाध्याय का यह भी तर्क है कि शासक वंशों के विस्तृत वंशावलियों के आधार पर, जिसका गठन केवल सामंती से स्वतंत्र स्थिति प्राप्त करने वाले संक्रमण काल में हुआ था, वास्तविक मूल का निर्धारण नहीं किया जाना चाहिए। इन वंशावलियों का निर्माण कई चरणों में हुआ था और इनसे उस राजनीतिक प्रक्रिया का भी पता चलता है जिसके अंतर्गत सामंती स्थितियों से ऊपर उठने का प्रयास

जारी था। यहां अपने दावों और उपाधियों द्वारा वल्लभी के राजा में निष्ठा जताने वाले गुजरात के गुर्जरों या किष्किंधा और धावागर्व के गुहिलों के उदाहरण यह उल्लेख करते हैं कि उनकी शुरुआत मूलतः सामंती स्थिति से हुई। सामंती से स्वतंत्र प्रस्थिति प्राप्त होने वाला परिवर्तन 'स्पष्टतः सैन्य शक्ति के विकास' से हुआ।

उत्पत्ति से जुड़े मिथकों की तुलना में, जो यह बताते हैं कि उत्तर भारत के राजनीतिक परिदृश्य में राजपूतों का प्रवेश आकस्मिक और वैभवशाली था, तत्कालीन राजनीतिक संरचना की तत्कालीन श्रेणीबद्धता में उनकी जाँच करना महत्वपूर्ण है। चट्टोपाध्याय ध्यान दिलाते हैं कि "इस प्रारंभिक राजनीतिक चरण को समझना अनेक कारणों से महत्वपूर्ण है। इससे हमें अन्य प्रक्रियाओं की जाँच करने में सुविधा होगी, जैसे अपनी प्रारंभिक सामंती प्रस्थिति से राजनीतिक आधिपत्य स्थापित करने के प्रयत्न में राजपूत वंश कैसे अपने अंतःग्रथित हितों के लिए आर्थिक एवं सामाजिक आधार तैयार करने की ओर अग्रसर हुए।"

राजपूत वंशों के नेटवर्क के इस आर्थिक आधार की क्या विशेषताएँ थीं? सबसे पहली विशेषता थी, राजकीय परिवारों में भूमि का आवंटन। यह प्रक्रिया मुख्यतः चहमान वंशों के विस्तार में देखी जा सकती है। रजोगढ़ में मिले अलवर के गुर्जर प्रतिहारों के मठान के अभिलेख में पाए गए 'वंशपोतकभोग' (वंशजो द्वारा भोगी जाने वाली सम्पदा) जैसे शब्दों को वंश दाय या विरासत के अर्थ में समझा गया है। जयपुर में 973 ईसवी के हर्ष के अभिलेख में भी वंश की विशिष्टता निर्दिष्ट की गई है। यहाँ हमें राजा सिंहराज, उनके वत्सराज और विग्रहराज नामक दो भाइयों तथा चंद्रराज और गोविंदराज नामक उनके दो पुत्रों के स्वभोग (निजी सम्पदा) के प्रसंग मिलते हैं। अभिलेख में भोग (सम्पदा) के हकदार एक अन्य व्यक्ति का भी जिक्र है, जो संभवतः गुहिल वंश का था। राज्य के भीतर दुःसाध्य (अधिकारी) की अपनी भूसम्पत्ति हुआ करती थी लेकिन भूमि प्रदान करने के लिए उसे राजा की स्वीकृति पर निर्भर होना पड़ता था। क्योंकि इस संदर्भ में उसके अधिकार सीमित थे। दूसरी ओर ऐसे लोग भी थे जिन्हें इस तरह की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं थी और वह स्वयं अनुदान करने में सक्षम थे। यह प्रक्रिया बारहवीं शताब्दी तक और विकसित होती गई जब नाडोल चहमानों के समय में ग्रास, ग्रासभूमि तथा भुक्ति कहे जाने वाले आवंटनों का अधिकार राजा, कुमार (राजकुमार), राजपुत्रों रानियों और एक प्रसंग में राजा के मामा, जो निश्चय ही उस वंश का सदस्य नहीं था, का हुआ करता था।

इस काल में गढ़ों का निर्माण राजपूतों के आर्थिक आधार की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता थी। ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में बड़ी संख्या में गढ़ों का निर्माण किया गया। यह राजपूतों द्वारा इस काल में किए गए क्षेत्रीय विस्तार की उपलब्धि है। अभिलेख राजस्थान के विभिन्न हिस्सों में इन गढ़ों के स्थान को भी दर्शाते हैं। इनमें से कुछ गढ़ हैं भरतपुर क्षेत्र में काम्यकीयकोट्टा में, अलवर में राजौर में राजपुरा, जोधपुर के पास मंडोर में मांडव्यपुरा- दुर्ग, चित्तौड़ में चित्रकुलमहादुर्ग, आदि। यह गढ़ केवल सुरक्षा के लिए ही नहीं थे बल्कि चट्टोपाध्याय के अनुसार, जैसा कि इनमें से कुछ में आबादी का संगठन स्पष्ट करता है, कि इनकी व्यापक गतिविधियाँ रही होंगी। यह गढ़ उदीयमान शासक परिवारों की शक्ति के बहुसंख्यक केंद्रों का प्रतिनिधित्व करते थे और ऐसा प्रतीत होता है कि पड़ोसी क्षेत्रों में इनके काश्तकारों के साथ निकट संबंध थे। ऐसी स्थिति में यह गढ़ ग्राम्य

परिवेश को नियंत्रित करने के साधन हो सकते थे और इससे इन क्षेत्रों पर विभिन्न वंशों के अधिपत्य का पता चलता है। संभवतः गढ़ों और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच आर्थिक विनिमय भी रहा होगा। इस विनिमय तंत्र पर भी गढ़ों का नियंत्रण रहा होगा।

सामाजिक संबंधों के स्तर पर वंशों के सुदृढीकरण या संगठन को वंशों के बीच विवाह संबंधों से आंका जा सकता है। यहाँ चट्टोपाध्याय अभिलेखों तथा वंशावलियों की ओर ध्यान दिलाते हैं। वंशावलियों में दर्ज विवाहों के विवरण निश्चितता से यह सिद्ध करते हैं कि 'विवाहों के विवरणों को वंशों के लिए उनके महत्वपूर्ण राजनीतिक निहितार्थ के मद्देनज़ दर्ज किया गया था'। विवाह साक्ष्यों को कालक्रमानुसार जांचते हुए चट्टोपाध्याय विवाह-तंत्र के ढाँचे में परिवर्तन देखते हैं जिसमें वंश का तथाकथित मूल ही केवल एक महत्वहीन भूमिका नहीं निभाता है, बल्कि अंतर्वंशीय संबंधों की ओर एक स्वाभाविक परिवर्तन भी दिखाई देता है'। जोधपुर क्षेत्र से प्राप्त प्रतिहार वंश के 837 ईसवी के एक अभिलेख में यह उल्लेख किया गया है कि वंश के प्रवर्तक ने ब्राहमण और क्षत्रिय स्त्रियों से विवाह किया। इसके बाद 861 ईसवी में लिखे गये अभिलेख में जिक्र है कि ब्राहमण पत्नी को वंश परंपरा से बाहर कर दिया गया। इसी तरह की वंशावलियाँ दर्शाती हैं कि प्रतिहारों और भट्टी वंशों में भी अंतर्जातीय विवाह हुए थे। इसी प्रकार चहमान अभिलेखों में दर्शाया गया है कि विवाह के लिए राष्ट्रकूट, रात्रीध और राठौर वंश उनकी पसंद में शामिल थे।

चट्टोपाध्याय का तर्क है कि किसी खास समय में विवाह के ज़रिए अंतर्वंशीय संबंध दो वंशों तक सीमित हो सकते थे और इस ढाँचे में किसी प्रकार की संगति' इन वंशों के बीच राजनीतिक संबंधों के कारण रही होगी जैसा कि गुहिलों के प्रसंग में था कि यह संगति काफी व्यापक थी'। "अधिकतर इन वंशों के बीच वैवाहिक तंत्र का नेटवर्क उन वंशों के बीच था जो राजपूत वर्ग के रूप में संगठित हुए। उनका मानना है कि इसके कारण अनिवार्य रूप से राजनीतिक थे क्योंकि उपर्युक्त प्रमाण प्रारंभिक मध्यकालीन राजस्थान के शासन करने वाले सन्भ्रांत वंशों से मिलते हैं"।

चट्टोपाध्याय आगे तर्क देते हैं कि "विवाह के माध्यम से बनने वाले अंतर्वंशीय संबंधों के व्यापक सामाजिक निहितार्थ भी अवश्य रहे होंगे। इससे हूणों जैसे वर्गों को, जिन्होंने इस समय तक पश्चिम भारत में पर्याप्त राजनीतिक शक्ति अर्जित कर ली थी, राजपूत वंशावलियों में अंततः शामिल होने जैसी सामाजिक वैद्यता भी मिल रही होगी"। अंतर्वंशीय वैवाहिक संबंधों से सामाजिक तथा राजनीतिक गतिविधियों के व्यापक क्षेत्रों में सहयोग भी स्थापित हुआ होगा। यहाँ गुहिल अल्लाता के प्रमाण का जिक्र किया जा सकता है जिसका विवाह हूण राजकुमारी से हुआ था और जिसके पुत्र नरवाहन के राज्य की गोष्ठी में एक हूण सदस्य था। दूसरे प्रसंग में हस्तिकुंडी राष्ट्रकूट वंश का अनाहस्तिकुंडी वंश में ब्याहे गए धारवर्ष परमार के राज्य में धार्मिक संस्थाओं की गतिविधियों में शामिल था। यह उदाहरण बताते हैं कि वैद्यता की यह राजनीतिक प्रक्रिया, जिससे राजपूतों की शुरूआत हुई तत्त्वतः कैसे एक सामाजिक प्रक्रिया में परिवर्तित हुई। हालांकि इस प्रक्रिया के राजनीतिक आयाम थे फिर भी राजपूतों की उत्पत्ति की प्रक्रिया में यह एक विभिन्न चरण दर्शाती है।

वंशों का विस्तार

बी.डी चट्टोपाध्याय आगे तर्क देते हैं कि धीरे धीरे राजपुत्र और महाराजकुमार (राजा के बेटे) जैसे शब्द "अनिवार्यतः एक उच्च राजनीतिक प्रस्थिति" के नहीं बल्कि वंशज समूहों के द्योतक बन गए। सोपा ने 1301 ईसवी के चित्तौड़ में मिले एक अभिलेख का उल्लेख किया है जिसमें राजपुत्रों की तीन पीढ़ियों का जिक्र है। इसके मददेनजर चट्टोपाध्याय का मानना है कि "13वीं शताब्दी के अंत तक राजपुत्र शब्द केवल एक राजनीतिक प्रस्थिति को ही व्यक्त नहीं करता था बल्कि वह आनुवांशिकता को भी व्यक्त करता था"।

चट्टोपाध्याय उद्धृत करते हैं कि प्रारंभिक मध्यकाल में राजपूतों का विस्तार कई तरह के स्रोतों से मालूम होता है। वह हेमचंद्र के त्रिसस्तिशलाकापुरु-संचरित को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि उसमें राजपुत्रकः या राजपुत्र वंशजों या कई राजपुत्रों का उल्लेख है। परवर्ती 11वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में माउंट आबू में मिले अभिलेख में एक यशस्वी राजपुत्र वंश के सभी राजपुत्रों का उल्लेख मिलता है। यहां, राजपुत्र का अर्थ एक बड़े दायरे में "राजा के वास्तविक पुत्र से लेकर छोटे से छोटे भूमिपति" तक के लिए प्रयुक्त किया जाता था। कुमारपालचरित और राजतरंगिणी सूचित करते हैं कि राजपूतों के रूप में स्वीकृत कई वंश पर्याप्त संख्या में थे। चट्टोपाध्याय के अनुसार इन स्रोतों में निश्चित संख्या के प्रसंग नहीं मिलते बल्कि वंशानुक्रम के आधार पर ये एक राजपुत्रों को दूसरों से अलग होने का संकेत देते हैं।

बारहवीं शताब्दी के बाद से सामंत और महासामंत जैसे सामंती उद्बोधनों का प्रयोग कम से कम हुआ। बाद में राजपुत्र, रौता, राउत, राजकुल या रावल, रानका जैसे शब्दों का प्रयोग आम प्रचलन में था। इन शब्दों के आगे सामंत या महामंडलेश्वर जैसी आधिकारिक उपाधियाँ जोड़ी जाती थीं जो राजपुत्रों और अन्य लोगों की उन पदवियों को व्यक्त करती थीं जो उन्हें प्रशासनिक व्यवस्था में प्रदान की गई थीं। अभिलेख यह भी दर्शाते हैं कि राजपुत्र और राउत जैसे शब्द कुछ वंशों तक ही सीमित नहीं थे जैसा कि श्री वंश की राउत जैसी अभिव्यक्तियों से स्पष्ट है। चट्टोपाध्याय कहते हैं कि ऐसी अभिव्यक्तियाँ उस व्यवस्था के लचीलेपन का पैमाना थीं जिसमें नए समूहों को उनके राजनीतिक नेतृत्व और शक्ति के बल पर शामिल कर लिया जाता था।

चट्टोपाध्याय का मानना है कि इस समय में वंशों की बहुतायत के साथ दो भिन्न प्रक्रियाएँ देखी गईं। पहली थी उन प्रारंभिक क्षत्रिय समूहों की राजनीतिक हैसियत को नष्ट करना "जिनका प्रभुत्व अपेक्षाकृत कम था। यह हमें उन अभिलेखों से ज्ञात होता है जहाँ यह वर्णित है कि क्षत्रिय व्यापारियों तथा कारीगरों के व्ययसाय को अपनाने लगे थे। इस समय शासक वर्ग के लिए पसंदीदा शब्द क्षत्रिय नहीं बल्कि राजपूत हो गया था। दूसरी प्रक्रिया थी विभिन्न राजपूत वंशों के बीच बढ़ता हुआ "अंतर्वशीय सहयोग"। इसके प्रमाण विभिन्न सैन्य अभियानों में उनकी भागीदारी से मिलते हैं। चट्टोपाध्याय इस संदर्भ में इस समय के स्मारकों या स्मृति-प्रस्तरों के प्रमाणों की जाँच करते हैं। यह वीर स्तम्भ कई प्रकार से सामाजिक समूहों के बारे में सूचित करते हैं जिन्होंने इन गतिविधियों में भाग लिया था। शूरवीरों की स्मृति में बने यह यह स्मारक अधिकतर ऐसे समूहों से संबद्ध हैं जिन्हें राजपूतों के रूप में

स्वीकार किया गया है। इन स्मारक-प्रस्तरों में जिन वंशों के नाम दर्ज हैं उनमें प्रतिहार, चहमान, गुहिला परमार, सोलंकी, राठौर, चंदेल, बोदना, मोहिला, देवड़ा, डोडा, दहिया, भीचि, धरकट, आदि शामिल है। इन स्मारकों पर वीरगति को प्राप्त हुए वीरों की राजपुत्र, राणा, राउत जैसी उपाधियाँ भी उनकी राजनीतिक तथा सामाजिक हैसियत दर्शाने के लिए दर्ज हैं। चट्टोपाध्याय तर्क देते हैं कि "जिस तरह से इन स्मृति-प्रस्तरों को गढ़ा गया और इनमें से कई जिस प्रकार प्रारंभिक मध्यकालीन राजस्थान के जो संदर्भ प्रस्तुत करते हैं वे बहुत हद तक उन नए क्षत्रिय समूहों से संबद्ध हैं जिन्होंने मिलजुल कर राजस्थान की राजनीतिक व्यवस्था बनाई"।

19.2 वंशों की संरचना: संरक्षक-आश्रित ढाँचा

संक्षेप में चट्टोपाध्याय का तर्क है कि "केवल राजवंशीय संबंधों के इस विस्तार में, जिससे सामाजिक संबंधों का एक व्यापक क्षेत्र बना, राजपूतों का काल और स्थान की दृष्टि से भावी विकास के चरणों का पता चलता है"। (*आइडिया ऑफ राजस्थान*, खंड 1, पृ. 186) मुगल काल पर नॉरमन जीग्लर का लेखन राजपूतों में सगोत्रता और वंश संबंधों से सेवाओं तथा विनिमय के नेटवर्क की ओर गतिशीलता को दर्शाता है। इस विचारधारा का मुख्य तर्क राजपूतों की सामाजिक संरचना के विस्तार के विवरण से संबंधित है जो मुख्यतः जीग्लर की धारणा पर आधारित है। हम बाद में इसे रिचर्ड फॉक्स के विवरणों के साथ जोड़ेंगे।

जीग्लर इस बात की ओर ध्यान दिलाते हैं कि मध्यकाल तक राजपूतों की पहचान और संदर्भ की दो प्राथमिक इकाइयाँ थीं। यह थीं उनका भाईचारा (भाईबंध) और विवाह द्वारा उनके संबंध (सगा)। मोटे तौर पर देखा जाए तो भाईबंध वह इकाई थी जो कुल या वंश से अभिव्यक्त होती थी और इसमें एक ही पूर्वज (वडेरो) से उत्पन्न पुरुषों से संबद्ध सभी लोग शामिल होते थे। एक ही वंश का फैलाव राजस्थान में विभिन्न क्षेत्रों में होता था और यह किसी क्षेत्र पर संयुक्त रूप से नियंत्रण रखने वाला कोई प्रतिष्ठित समष्टि समूह नहीं होता था। यह समष्टि समूह खाप और नाक थे। इनमें तीन से पाँच या छः पीढ़ियों के सदस्य थे और पुरुषों की ओर से निकटता से संबद्ध सभी लोग, जैसे उनकी पत्नियों, पुत्र और अविवाहित पुत्रियाँ भी शामिल रहा करती थीं।

भ्रातृत्व क्षेत्रीय रूप से उन स्थानों से जुड़ा हुआ था जो क्षेत्र भाइयों के बीच उनके हिस्से के बटवारे (*भाईवंट*) से प्राप्त होते थे। यह क्षेत्र भाइयों के बीच उनके जन्मस्थान के नाम से जाना जाता था। जन्मस्थान का अर्थ भ्रातृत्व का मूल स्थान और उसका विस्तार भी था तथा यह वह भूमि भी थी जहां से भ्रातृत्व को शक्ति और सम्पोषण प्राप्त होता था। जीग्लर कहते हैं कि "भ्रातृत्व और भूमि दोनो ही अविच्छन्न रूप से जुड़े हुए थे और एक दूसरे के लिए सहारा भी थे"। बी.डी. चट्टोपाध्याय के अनुसार प्राचीन काल में एक नई भूमि इकाई चलन में थी जिसमें छह गाँव और उसके गुणज हुआ करते थे। इस भूमि खंड या इकाई का इस्तेमाल किसी भी प्रकार से राजस्थान तक सीमित नहीं था। फिर भी इस काल में अन्य स्थानों पर अपेक्षा पश्चिम भारत में इसके प्रयोग का प्रभाव अधिक था। सौराष्ट्र में 84 गाँवों की भूमि इकाइयों के प्राचीनतम संदर्भ मिलते हैं जो आठवीं शताब्दी के अंत में गुर्जर प्रतिहारों के पास थीं और राजस्थान तक इसका विस्तार शायद

शासक वर्गों के बीच राजनीतिक नियंत्रण और भूमि के बंटवारे की प्रक्रिया को आसान करने के लिए था। चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक '84 गाँवों के चौरसिया भूमिपति सरदारों के जाने-माने वर्ग बन चुके थे'। चट्टोपाध्याय आगे कहते हैं कि "चौरसिया व्यवस्था निश्चित तौर पर हमेशा राजपूतों की भूभागीय व्यवस्था से ही जुड़ी हुई नहीं थी बल्कि इसने उस प्रणाली को एक "सैद्धांतिक ढाँचा" प्रदान किया जिसमें भू-इकाइयों की श्रेणीबद्धता तथा भू-इकाइयों और वंश के सदस्यों के मध्य संबंधों को अच्छी तरह से तय किया जा सकता था'।

जीगलर बताते हैं कि राजपूतों के लिए पहचान और संदर्भ की दूसरी प्राथमिक इकाई थी उनका संगठन अर्थात् जिनको वे अपनी बेटियाँ देते थे और/या जिनसे विवाह में वे पत्नियाँ लेते थे। यह संबंध विशेष तौर पर महत्वपूर्ण होता था क्योंकि "जहाँ विवाहों में एक स्त्री को उसके पति के भाईबंध से जोड़ कर देखा जाता था, वहीं इसको संबंध और मैत्री स्थापित करने वाला भी माना जाता था'। हालाँकि किसी स्त्री के पिता के भाईबंध उसे 'बहन' मानते रहे और लेवी स्ट्रॉस की क्लासिकीय अवधारणा में "किसी माँ के भाई (मामा) और उसके बेटे के बीच जबरदस्त स्नेह के संकेत मिलते हैं'।

जीगलर भाईबंध और सगा के महत्व को रेखांकित हुए कहते हैं कि 'पहचान और संदर्भ की प्रारंभिक या प्राथमिक इकाई मुगल काल में भी राजपूतों को परिभाषित करने में अपनी केंद्रीयता के लिए निरंतर जारी थी। यह स्वाभाविक घनिष्ठता की भी इकाइयाँ थी जिनसे सहयोग, सहारे और पारस्परिकता के अविलम्ब समझौते होते थे और इस अर्थ में यह अधिकतर राजपूतों की मूल निष्ठा स्थापित करती थीं। यह आवश्यक नहीं था कि वह लोग उसके प्रति निष्ठावान थे लेकिन किसी एक विशेष भाईबंध के वर्चस्व वाले क्षेत्र में निष्ठा की जटिलताएँ इन समूहों द्वारा उत्पन्न संरचनात्मक विशेषताओं की जटिलताओं को ही दर्शाती हैं'।

जीगलर के विवरण के अनुसार इस दौरान सगोत्र संस्था का प्रभाव जारी रहा। उनके अनुसार यह पश्चिम मारवाड़ के राठौर भाईबंध संबंधों से स्पष्ट हो जाता है। अपने एकरेखीय वंश परंपरा में भाइयों के बीच भूमि तक पहुँच के अधिकार के साथ समानता का सिद्धांत जारी रहा। भाइयों के बीच पद और अधिकार को लेकर होने वाले भीतरी मतभेद भी कम रहे। हालाँकि यह राठौर भाईबंध राजपूत शासकों या मुगलों से अपेक्षाकृत स्वतंत्र थे। बाकी जगहों में, जैसा कि जीगलर कहते हैं, "भाईबंध अत्यधिक स्तरीकृत थे और उनकी सदस्यता में संपत्ति तथा शक्ति और अधिकार की स्थितियों के आधार पर भेद था। जीगलर बताते हैं कि इन भाईबंधों की व्यवस्था 'राजशाही और सेवार्थी नामक दो अन्य संस्थाओं से भी बहुत प्रभावित थी। यह संस्थाएँ निकटता से अंतर्संबद्ध थीं और अपेक्षाकृत अभिन्न समष्टि भाईबंधों की तुलना में सगोत्रता तथा संबद्ध क्षेत्रों के संदर्भ में नहीं बल्कि श्रेणीबद्ध संबंधों और आवासी समूहों तथा लोगों में उच्च व्यक्ति या स्थानीय शासक (ठाकुर) के प्रति सामाजिक निष्ठा के संदर्भ में परिभाषित की जाती थीं। यहीं संबंध और निष्ठाएँ राजपूत शासक के स्थानीय राज्य को परिभाषित करती थीं और राज्य के विस्तार को निर्धारित भी करती थीं। वे उस राज्य के भीतर एकात्मता का प्राथमिक आधार भी बनाती थीं'।

जैसा कि हमने उल्लेख किया है, विभिन्न वंशों तथा विभिन्न व्यक्तियों और वंशों के बीच 'संबंधों का वर्णन करने के लिए जीगलर संरक्षक-आश्रित अवधारणा का प्रयोग करते हैं। भारतीय इतिहास में संरक्षक-आश्रित अवधारणा अक्सर प्रयुक्त हुई है। डेविड हार्डिमन के अध्ययन की तरह अन्य अध्ययन दर्शाते हैं कि यह अवधारणा स्थानीय यथार्थ को भले ही अच्छी तरह समझा सके लेकिन इसका प्रयोग करने में हमें थोड़ी सावधानी बरतनी होगी। उदाहरण के लिए, 'विशाल भारतीय गुट' जैसे अधि-सामान्यीकरणों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। तब हमें सतर्कता से जीगलर के दावे को स्वीकार करना चाहिए जिसके अनुसार "शासक के अपने परिवार के बाहर, उनके आश्रित ही सत्ता की श्रेणियों और भूमि की प्राप्यता के मुख्य हकदार थे"। इस अवधारणा के महत्व का उल्लेख करते हुए जीगलर कहते हैं कि "एक समूह के रूप में आश्रितों में राजा के वंश और भाईबंध के राजपूत ही नहीं बल्कि विभिन्न वंशों और भाईबंधों के अन्य राजपूत भी शामिल होते थे। यह कहते हैं कि "स्रोतों में उन्हें सामान्यतः चाकर कहा गया है जिसका अर्थ नौकर होता है लेकिन मारवाड़ियों में यह 'सैन्य अनुचर' है। अर्थात् वह जिसने अपने हथियार मालिक की सेवा में रख दिए हों और इसी शर्त पर गाँवों पर उसका अधिकार था या वह जो अपने संरक्षक के निजी कामकाज के लिए परिवार के सदस्य की हैसियत से शामिल कर लिया गया हो। इसके अतिरिक्त 'संरक्षकों और आश्रितों के श्रेणीबद्ध संबंध सभी स्तरों के राजपूत समाज में चलन में थे। राजस्थान में आश्रितों की एक महत्वपूर्ण संस्था थी क्योंकि सामाजिक संगठन में उन्होंने सगोत्रता से ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया था। इसके अलावा इसने न केवल भूमि के अधिकारों और सत्ता के पदों को नियंत्रित किया बल्कि वे जिन स्थानीय शासकों पर आश्रित और उनकी कृपादृष्टि तथा इनामों के लिए निर्भर रहते थे, उन्हें निग्रह-बल उपलब्ध कराया जिसे वह अपने स्थानीय श्रेणीबद्ध संगठन को मजबूत करने में लगा सकता था। यहाँ जीगलर ध्यान दिलाते हैं कि "मुगलकाल के पहले से ही राजस्थान में सेवार्थी तथा प्रशिक्षु संस्था विद्यमान थी लेकिन संगठन के रूप में सगोत्रता के कारण सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में इनका तेज़ी से विकास हुआ"। इन संस्थाओं के विकास की वजह वह मुगलों की अप्रत्यक्ष शासन नीति को मानते हैं। इसके तहत राजस्थान में शासन के लिए उत्तराधिकारी नियुक्त करने का अधिकार अपने पास रख बदले में हथियार और राजस्थान के भीतर और बाहर अन्य स्थानों पर पैतृक भूमि (वतन-जागीर) की जागीरों के रूप में संसाधन उपलब्ध कराए जाते थे। इन्हीं संसाधनों की बदौलत स्थानीय शासक सत्ता के अपने क्षेत्र सुदृढ़ करते थे और प्रशासन को केंद्रित करते थे। इस प्रकार इन परिवर्तनों पर आधारित इस काल में प्रारंभिक 17वीं शताब्दी में "पहले वास्तविक राजपूत राज्यों को हम उस अर्थ में पाते हैं कि वहाँ परिभाषित और संस्थागत केंद्रित सत्ता थी जिसने उपयुक्त प्रतिबंधों और प्रवर्तनों के साथ नियम बनाए"। यही वह समय था जब मुगल शासकों ने स्थानीय शासकों को भूमि के अधिकारों के मद्देनजर स्थानीय श्रेणीबद्ध प्रणाली में पुरस्कारों और सम्मानों के प्राथमिक स्रोत के लिए अधिक व्यापक अधिकार प्रदान किए। इस प्रकार जीगलर दावा करते हैं कि "स्थानीय शासकों ने जब उन स्थानों पर व्यापक नियंत्रण कर लिया, जिन पर उन्हीं के वर्ग के लोगों ने परंपरागत तौर पर शासन किया था तब उन्होंने इन स्थानों पर सगोत्रता और जन्म से संबद्ध प्रथागत अधिकारों से बने संबंधों को सेवा और विनिमय पर आधारित संबंधों में परिवर्तित करने का मन बनाया"। जैसा कि ख्यातों में दर्ज है इस बात का विरोध हुआ। इस विरोध में

“सामान्यतः उस आधार को चुनौती देने का रूप धारण किया जिसके बूते शासक किसी क्षेत्र पर अपने प्रभुत्व या श्रेष्ठता के उच्चाधिकार का दावा करते थे और अक्सर हथियारबंद युद्ध करते थे। यह संघर्ष तब वंश आधारित संबंधों और उभरते हुए चाकर (संरक्षक-आश्रित) संबंधों के बीच राजपूत संगठनों में हो रहे परिवर्तनों को प्रकट करते थे और “भाईबंधों की भावना, समानता के मूल्य तथा विरासत के अधिकार और जन्मभूमि पर प्रभुत्व के भाव उत्पन्न करते थे। जीग्लर कहते हैं कि “मुगलकाल में इन भावनाओं तथा मूल्यों ने एक प्रभाव पैदा किया जिसे समय-समय पर उभारा गया। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि कुछ विशेष भूमियों पर अधिकार की भिन्न-भिन्न व्याख्याओं ने न केवल स्थानीय तौर पर बल्कि मुगल सत्ता के प्रति राजपूतों की निष्ठा के संदर्भ में भी भूमिका निभाई।

नौकरशाही

इस काल में भूमि से राजपूतों के बदलते संबंधों का एक अन्य पक्ष था इन संबंधों की बढ़ती हुई नौकरशाही क्योंकि प्रशासनिक प्रणालियाँ अधिक परिष्कृत हो गई थीं। मारवाड़ में गाँवों को लिखित अधिकार-पत्र (पट्टों/पट्टा) जारी कर एक पहल की गई। जीग्लर बताते हैं कि “प्रारंभिक मुगल काल तक ऐसे अधिकार पत्रों के स्वामित्व को वैधता मिली हुई थी जो भूमि के लिए वंश के नाम पर या ज़बानी स्वीकृति के दावों से ऊपर थी। जागीर प्रदान करने के लिए पाटो मुगलों के जागीर प्रथा के मॉडल पर आधारित दस्तावेज़ था और यह एक “ चल स्वीकृति या अनुदान था जो कार्यकाल के हिसाब से वृत्ति भोगने” पर आधारित था। इसके तहत न केवल गाँवों के अधिकार दिए जाते थे बल्कि ठाकुरों द्वारा सेना के लिए दिए जाने वाले पशुओं और घुड़सवार सैनिकों को संगठित करने के लिए इन गाँवों का मूल्यांकन (रेख) भी इसमें शामिल होता था। ठाकुरों पर उनके गाँवों के कुल मूल्यांकन (रेख) के कुछ प्रतिशत पर आधारित उत्तराधिकार कर (नज़राना) भी लगाया जाता था।

जीग्लर के अनुसार “महाराजा जसवंत सिंह (1638-78) के समय तक अधिकार-पत्र परिवारों के मुखियाओं को ही नहीं जारी किए जाते थे बल्कि उन जूनियर सदस्यों और विभिन्न राजपूतों को भी जारी किए जाते थे जो मुगल मनसबदारों की तरह एक गाँव से दूसरे गाँव नियमित रूप से स्थानांतरित किए जाते थे। वंशावलियों से ऐसा प्रतीत होता है कि शुरू के वर्षों में स्थानीय शासक उन विशेष स्थानीय क्षेत्रों को ही अनुदान प्रदान किया करते थे जहाँ विशिष्ट भाईबंध संकेंद्रित होते थे। बाद में उन्होंने अपने चाकरों को अधिक व्यापक क्षेत्रों में भेजा और इस तरीके से स्थानीय वंशीय राज्यक्षेत्रों के प्रभुत्व को समाप्त किया। यह भी स्पष्ट होता है कि इस समय तक चाहे चाकर हो या वंशबंधु, भूमि पर अधिकार लेने से पहले सभी लोग पट्टा - लेने वाले उम्मीदवार की हैसियत से चाकरी किया करते थे।

एक अन्य महत्वपूर्ण बात जीग्लर बताते हैं कि इस काल में वैवाहिक संबंधों द्वारा राजपूतों का क्षेत्रीय विस्तार भी होता था। ऐसा प्रतीत होता है विभिन्न राजपूत विवाह से हुई संधि से भी भूमि पर अधिकार प्राप्त करते थे। इस संबंधों ने साला-कटारी जैसी उपहार परंपरा से संधियाँ और गठजोड़ बनाए जिनसे भाईबंध की तिरछी काट करने वाली सामूहिक क्षेत्रीयता की भावना पैदा हुई जो कई अर्थों में भाईबंध के समान थी। इन दोनों के उत्तराधिकारियों के लिए भूमि-अधिग्रहण और

उसके इस्तेमाल के अधिकार अपेक्षित थे। सेवा और विनियम तंत्र और वैवाहिक गठजोड़ों की दोनों प्रणालियों में भेद करने की आवश्यकता है क्योंकि जैसा कि चट्टोपाध्याय स्पष्ट करते हैं कि प्राचीन समय में यह राजपूतों को सामाजिक संबंधों के व्यापक दायरे में लाने में सहायक थी।

विचारधारा

वंशगत सगोत्रता पर आधारित प्रणालियों, विवाह-प्रणालियों और सेवा तथा विनियम प्रणालियों से सह-अस्तित्व के कारण अक्सर इन्हीं तंत्रों में रचे-बसे राजपूतों के आचार-व्यवहार और नियमों की असंगत व्याख्याएँ पैदा हुई।

जींगलर कहते हैं कि सत्रहवीं शताब्दी में पारंपरिक राजपूत साहित्य सामान्य नियमों के संदर्भ में हमारे सामने आचार-व्यवहार के समुचित नियम प्रस्तुत करता है। राजपूतों के लिए यह नियम धर्म था जिसे व्यवहार की स्वाभाविक आचार संहिता की तरह लिया जाता था और जो प्रत्येक राजपूत से जन्म से ही उसे अमल में लाने की अन्तः जाति शक्ति के साथ विरासत में मिलती थी। अपेक्षाओं में तमाम असंगतियों के साथ सेवा और विनियम प्रणाली अपनाने के बाद कई आधारभूत सिद्धांतों में से एक जो गोत्रकदंब नहीं करने का था, अर्थात् अपने ही गोत्र (वंश उपसमूह) के सदस्यों का वध नहीं करना, संकट में पड़ गया। महत्वपूर्ण प्रश्न था अपने गोत्र के सदस्यों को बचाना या जिस मालिक की चाकरी कर रहे हो, उसे बचाना। जींगलर जब मुगल समय के प्रसंगों की जांच करते हैं तो मर्यादा संबंधी विचारधारा में एक परिवर्तन देखते हैं जो विशेष रूप से गोत्रकदंब के दोषों को उजागर करता है। जींगलर कहते हैं कि यह परिवर्तन इस प्रकार संभव हो सका जिस प्रकार से राजपूतों ने अपनी-अपनी उत्पत्ति पर विचार किया। एक मिथक के अनुसार राजपूत उस समय प्रकट हुए जब परंपरागत श्रेणीबद्ध प्रणाली दह चुकी थी। मुगलों और राजपूत शासकों ने जब उन्हें अवसर दिए तब बहुत प्रयासों के बाद। वे अपना पुनर्निर्माण कर पाए।

इस नए समाज में, जहां वे विभिन्न कुल देवताओं के आर्शीवाद, अपने शासकों की और भाद में मुगलों की कृपा से संभल रहे थे, राजपूतों ने अपने आपको पुनर्स्थापित किया। इस स्थिति में उनके द्वारा अपने पुनर्निर्माण को प्राथमिकता दी गई और गोत्रकदंब जैसी परंपरागत अवधारणा को अयोग्य करार दिया गया।

19.3 रिचर्ड फॉक्स का विकासात्मक चक्रीय ढाँचा

यहां रिचर्ड फॉक्स का जिक्र करना उपयोगी होगा। राजपूतों के वंश-गठन की जो तस्वीर हवे जींगलर से मिलती है वह उनकी उत्पत्ति से लेकर सेवा और विनियम व्यवस्था तक का एकरेखीय विकास दिखाती है। राजस्थान के स्थानीय दस्तावेजों पर आधारित यह तस्वीर एक ही पक्ष प्रस्तुत करती है। हालांकि फॉक्स उत्तरप्रदेश में राजपूत वंशों और एक अलग समय तथा काल (19वीं शताब्दी) की बात करते हैं और वह इस दृश्य को व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करते हैं। मोटे तौर पर कहा जाए तो वह राजपूत वंश परंपरा के विकास को विकासात्मक चरणों में प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार वह मानते हैं कि राजा या राज्य से भाईबंधों की घनिष्ट परस्पर क्रियाएँ वंश परंपरा के विकास में विभिन्न चरण हैं। इन चरणों को विकासात्मक चक्र का

एक भाग माना जा सकता है क्योंकि इसमें संदर्भ या परिस्थिति के मद्देनजर वंश परंपरा की प्रारंभिक चरणों की ओर रूख करने की संभावना बनती थी। इसका अर्थ यह हुआ कि हम उत्पत्ति से सेवा प्रणालियों तक वंश परंपरा के विकास को वापिस उत्पत्ति के चरण तक लौटता हुआ देख सकते हैं। वह इसे "पारंपरिक चक्रीयता" कहते हैं। फॉक्स कहते हैं कि 'राजपूत वंश परंपरा के विकासात्मक चक्र के चार परस्पर संबद्ध घटक हैं। इनमें से कुछ का संबंध वंशों की पारिस्थितिकीय और जनसांख्यिकीय प्रकृति से है। अन्य घटक केंद्रीय सत्ता से इसके संबंधों के विषय में हैं'। वह स्पष्ट करते हैं कि प्रथमतः यह घटक क्षेत्रीय विस्तार के लिए उपलब्ध भूमि के परिमाण से जुड़े हैं। उनका मानना है कि 'क्षेत्रीय विस्तार या तो कम आबादी वाले क्षेत्रों और बंजर या उजाड़ भूमि पर खेती करके किया जाता था या कम घनी आबादी वाले कृषि क्षेत्रों को जीत कर उन पर कब्जा करके होता था। अछूते भू-भाग तराई क्षेत्र में थे। बंजर भूमि अकाल, महामारियों और युद्धों के समय किसानों द्वारा अपनी भूमि छोड़ कर चले जाने या मृत्यु हो जाने के कारण पैदा हो जाती थीं। विजय प्राप्त करना बहुत हद तक आबादी और वंशक्रम की प्रक्रिया पर निर्भर करता था। क्षेत्रीय सीमांत परिस्थितियां राजपूतों के वंशक्रमों के संगठनों को काफी हद तक प्रभावित करती थीं और केंद्रीय सत्ता के साथ उनके संबंधों की ओर संकेत करती थीं। सामान्यतः जब राज्य कमजोर होता था, केवल तब सीमांत क्षेत्र होते थे क्योंकि अराजकता के काल में भूमि बंजर हो जाया करती थी और जब राज्य शक्तिशाली होता था तो वह वंश परंपरा के विकास को सेना के बल पर सीमित या नियंत्रित कर सकता था'। बी.डी. चट्टोपध्याय का तर्क है कि राजस्थान में ऐसे विस्तृत भू-भाग सीमांत क्षेत्रों के विस्तार के लिए पहले से ही मौजूद थे।

"आबादी तथा वंशक्रम की संबद्धता तथा सैन्य सफलता" दूसरा घटक था। फॉक्स कहते हैं कि "वंशक्रम विकास के प्रारंभिक चरणों में या तब जब केंद्रीय सत्ता कमजोर होती थी तब एक बड़ी आबादी प्रायः सैन्य प्रक्रिया में मददगार होती थी। हालांकि बड़ी आबादी अक्सर सगोत्र-समूह में संबद्धता और सामूहिकता को कम करती थी। सैन्य सफलता के लिए क्योंकि संगोत्र-सहयोग आवश्यक था इसलिए आबादी और संबद्धता संतुलित हुआ करती थी। अन्यथा वंशक्रम का विखंडन हो जाता था। सगोत्र समूह के सैन्य बल का आधार बनाने वाली संबद्धता या जुड़ाव कभी-कभी सगोत्र शिष्टाचारों और वंशविषयक आग्रहों पर आधारित होती थी। बाद में यह संसाक्त या संबद्धता वंशक्रम के भीतरी स्तरीकरण का परिणाम बनी जिसके कारण राजा और सभ्रांत लोगों को शक्तिशाली सत्ता मिल सकी। इसी तरह पहले पहल सैन्य सहयोग मुख्यतः सगोत्र अनुशासन से और बाद में सैन्य बल के सामंतीकरण से पैदा हुआ।

तीसरा घटक है "वंश के सभ्रांतों की शक्ति और प्रकृति"। यह घटक वंशक्रम के भीतर स्तरीकरण के संतुलन से संबद्ध है। कभी-कभी एक ही वंश में आंतरिक पद और आर्थिक विभेदन छोटे और कम होते थे। जब ऐसा होता था तो वंश की अल्पतम वंशावली या निर्वाचित वंश नेता सगोत्र भाईबंध की अन्य अल्पतम वंशावलियों से अधिक उन्नत नहीं होता था। वंशीय नेतृत्व वंशक्रम के हितों का समग्रता से प्रतिनिधित्व करता था और केंद्रीय सत्ता से समझौता करने की उसकी क्षमता समूचे सगोत्र समूहों की सैन्य चुनौती पर निर्भर करती थी। अन्य अवसरों पर वंश के ही भीतर स्तरीकरण व्यापक होता था और वंश के राजा और उसके निकट

के संबंधी एक शक्तिशाली समूह बना लेते थे जो अक्सर उनके संबंधियों के स्वामित्व और अन्य विशेषाधिकार छीन लेता था। इस प्रकार के वंशक्रमों में भीतरी शत्रुता बढ़ जाती थी और वंश के अधिकार-वंचित सदस्य विद्रोह कर देते थे और वंश के विशिष्ट लोगों के बीच राजप्रसाद में विद्रोह भड़क उठता था। कोई राजा शक्तिशाली साबित होगा या नहीं यह बात कुछ हद तक उसके पद की उसकी चमत्कारी परिभाषा पर निर्भर करती थी। लेकिन अधिक अनिवार्य रूप से यह बात आबादी, सैन्य सफलता और राज्य के संगठन के कारकों की अनुकूल उपस्थिति पर निर्भर करती थी।

विकासात्मक चक्र में चौथा घटक है "राज्य की शक्ति और उसकी प्रकृति"। फॉक्स कहते हैं कि "जब राज्य का प्रभाव स्थानीय स्तर पर क्षीण होता था, तब स्थानीय घटनाओं को नियंत्रित करने में और एक प्रबल वंश का सामना करने के लिए राज्य के पास कम शक्ति होती थी। जब राज्य शक्तिशाली होता था तब वह नवागुंतकों को आर्थिक सहायता देकर किसी उग्र वंश और उसके सभ्रांतों तथा किसानों को शांत करने का मन बना सकता था या फिर राज्य असहमत वंशों को सैन्य दंड देने की जिम्मेदारी भी ले सकता था। सगोत्र या सजातीय खण्डीकरण या किसी वंश की सैन्य सफलता अक्सर केंद्रीय सत्ता की गतिविधियों से बहुत प्रभावित होती थी। यदि राज्य शक्तिशाली होता था तो उजाड़, बंजरभूमि या प्राकृतिक सीमांत क्षेत्रों के होने के बावजूद वह किसी वंश के विस्तार को प्रतिबंधित कर सकता था। शक्तिशाली राज्य किसी वंश के भीतरी स्तरीकरण को रोक देता था"।

जैसा कि फॉक्स निर्दिष्ट करते हैं इन्हीं चार घटकों ने वंशक्रमों की परंपरागत चक्रीयता को प्रमुखता से प्रभावित किया। यह संभव था कि कुछ वंश एक ही चरण पर ठहर जाते या ऐसी स्थिति से गुजरते जिसमें दो या अधिक चरण एक साथ मिल जाते। किसी भी स्थिति में हमें इसमें राजपूतों की वंश रचना की वह तस्वीर मिलती है जो अधिक परिवर्तनात्मक है और कई घटकों को स्पष्ट करती है। फॉक्स का वर्णन हालांकि 19वीं शताब्दी तक ही सीमित है, लेकिन हमें वंशक्रमों के पारस्परिक प्रभावों और राज्य में विविधता के महत्वपूर्ण तत्वों की जानकारी देता है। जीगलर जहाँ संरक्षक-आश्रित संबंध के विवरणों से संतुष्ट दिखाई पड़ते हैं, वहीं फॉक्स राजपूतों के वंश विकास के अधिक मूल्यवान सिद्धांत को सामने रखकर आबादी, पारिस्थितिकी और राज्य सत्ता की अस्थिर प्रकृति का हवाला देता है। हालांकि जीगलर ने स्थानीय वृत्तांतों, दस्तावेजों का भरपूर इस्तेमाल किया है लेकिन फिर भी इसमें रिक्तता मौजूद है।

19.4 सारांश

इस इकाई में हमने राजपूत वंश संरचना से संबंधित बी.डी. चट्टोपाध्याय और नॉरमन जीगलर के दो स्पष्टीकरण आपके सामने रखे। इन दोनों लेखकों ने राजपूत वंश के उत्थान से संबंधित प्रारंभिक मध्यकालीन भारत से लेकर मध्यकालीन भारत तक के प्रमाणों की जांच की है। इससे आपको वंश संरचना की प्रक्रियाओं को तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में समझने में मदद मिलेगी। यह सच है कि इस प्रक्रिया के चित्रण में दोनों लेखकों के दृष्टिकोणों में भिन्नता है। लेकिन दोनों ही उत्पत्ति के प्रश्न की तुलना में प्रक्रिया के प्रश्न पर ध्यान केंद्रित करते हैं। यही संकेद्रीकरण हमें दोनों कालों में वंश-निर्माण की सटीकता को समझने में मदद करता है। रिचर्ड फॉक्स के विचार

को यहां एक परिशिष्ट के रूप में राजपूतों के वंश निर्माण को व्यापक परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए रखा गया है।

19.4 अभ्यास

- 1) प्रारंभिक मध्यकाल में राजपूतों की सामाजिक संरचना राजनीतिक परिप्रेक्ष्य से सामाजिक परिप्रेक्ष्य में कैसे बदली?
- 2) क्या आप सोचते हैं कि यदि ज़ीग्लर ने अगर संरक्षक आश्रित ढाँचे की बजाय राजनीतिक परिप्रेक्ष्य ढाँचे की अवधारण अपनाई होती तो उनका विश्लेषण अधिक समृद्ध होता?



ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY